मेसर्स मैन्युअल्सन्स होटल्स प्राईवेट लिमिटेड

बनाम

केरल राज्य और अन्य

(2008 की सिविल अपील सं. 2480)

11 मई, 2016

[ए. के. सीकरी और आर. एफ. नरीमन, न्यायाधिपतिगण]

प्रशासनिक कानूनः वचन विबंधन- सरकारी आदेश दिनांक 11.7.1986 के माध्यम से, केरल राज्य में होटल स्थापित होने पर भवन कर से छूट दी गई- सरकारी आदेश के अनुसार, केरल भवन कर अधिनियम, 1975 में धारा एस. 3ए जोडी गई जिसके अनुसार भवन कर के भुगतान से छूट दी गई – हालांकि, 6.2.1997 को सरकारी आदेश के माध्यम से वादा की गई रियायत को अपीलार्थी को यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया कि धारा 3ए को 1.3.1993 के बाद से हटा दिया गया था, अतः छूट देने की शक्ति अपने आप चली गई थी; यह कि जब धारा 3. ए. विधि संहिता में थी तब इसके अंतर्गत कोई छूट अधिसूचना जारी नहीं की गई थी; और यह कि केवल कानून में संशोधन करने का वादा छूट का वादा नहीं करता हैः अभिनिर्धारित किया गया- धारा 3ए को केरल विधानमंडल द्वारा केरल भवन कर अधिनियम, 1975 में 6.11.1990 को उपयुक्त संशोधन करके अधिनियमित किया गया था -उक्त प्रावधान विधि संहिता में जारी रहा और केवल 1.3.1993 को हटा दिया गया था- इससे पता चलता है कि 6.11.1990 से 1.3.1993 तक, भवन कर से छूट देने की शक्ति वैधानिक रूप से धारा 3ए द्वारा सरकार को प्रदान की गई थी।- धारा 3ए. को सरकारी आदेश दिनांक 11.7.1986 में निहित वादों में से एक को पूरा करने के लिए शामिल किया गया था। -अपीलकर्ताओं ने, उक्त जी. ओ. पर भरोसा करते हुए, वास्तव में, 1991 तक एक होटल

भवन का निर्माण किया था-इसलिए, धारा 3ए. तहत एक अधिसूचना जारी नहीं करना सरकार का एक मनमाना कार्य था जिसका समाधान वचन विबंधन के सिद्धांत को लागू करके किया जाना चाहिए- अधिसूचना जारी नहीं करने का मंत्रिस्तरीय कार्य संभवतः उक्त सिद्धांत के तहत अपीलार्थियों को राहत पाने के रास्ते में बाधा नहीं बन सकता है क्योंकि यह सरकार की ओर से अपने वादे को पूरा किए बिना भागना अनुचित होगा- यह सच है, कि भारी सार्वजनिक हित का कोई अन्य विचार मौजूद नहीं था ताकि सरकार को अपने वादे से पीछे हटने में उचित ठहराया जा सके – इसलिए, वर्तमान मामले के तथ्यों पर जिस राहत को ढाला जाना चाहिए वह यह है कि जिस अवधि के लिए धारा 3ए लागू थी, उसके लिये अपीलार्थियों द्वारा कोई भवन कर देय नहीं था- हालाँकि, 1. 3.1993 के बाद की अवधि के लिए, छूट प्रदान करने के लिए कोई वैधानिक प्रावधान उपलब्ध नहीं है, अत: अपीलार्थियों को कोई राहत नहीं दी जा सकती है क्योंकि जब यह पाया जाता है कि इस तरह की राहत देना क़ानून के विपरीत होगा तब वचन विबंधन के सिद्धांत को ऐसा करना चाहिये- केरल भवन कर अधिनियम, 1975- धारा 3ए।

आंशिक रूप से अपील को स्वीकार करते हुए, न्यायालय ने

अभिनिर्धारित किया : वर्तमान मामले में, कार्यपालिका को नियमों या विनियमों का एक निकाय तैयार करने के लिए कोई परमादेश याचिका जारी नहीं की जा रही है जो प्राथमिक विधान की प्रकृति में अधीनस्थ विधान होगा (आचरण के सामान्य नियम होने के कारण जो जो उनसे बंधे हैं उन पर लागू होंगे) वर्तमान मामले के तथ्यों पर, केरल भवन कर अधिनियम, 1975 की धारा 3ए के तहत तथ्यों पर एक विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए। मोतीलाल पदमपत और नेस्ले में इस न्यायालय के निर्णयों के संदर्भ में वचन विबंधन के सिद्धांत का अनुप्रयोग के कारण इस तरह की विवेकाधीन शक्ति का गैर-प्रयोग स्पष्ट रूप से दूषित है। यही कारण है कि इस तरह की

शक्ति का गैर-प्रयोग अपने आप में एक मनमाना है जो कि सुसंगत तथ्यों पर विवेक का प्रयोग न करने से दूषित हो जाता है, अर्थात्, यह तथ्य कि एक शासनादेश दिनांकित 11.7.1986 द्वारा विशेष रूप से भवन कर से छूट प्रदान की गई थी यदि उक्त शासनादेश में किए गए अभ्यावेदन के अनुसार केरल राज्य में होटल स्थापित किए जाने थे। सच है, विधायिका को केरल भवन कर अधिनियम, 1975 में संशोधन के लिए कोई भी परमादेश जारी नहीं कर सकता है, क्योंकि ऐसा करना शक्तियों के पृथक्करण की संवैधानिक योजना के अंतर्गत न्यायपालिका को एक निषिद्ध क्षेत्र में अतिक्रमण करने में आवश्यक शामिल करेगा। हालांकि, तथ्यों में, शासनादेश दिनांकित 11.7.1986 के अभ्यावेदन को प्रभावी बनाने के लिए 6.11.1990 को वास्तव में केरल विधानमंडल द्वारा धारा 3ए केरल भवन कर अधिनियम, 1975 में उपयुक्त संशोधन करके अधिनियमित की गई थी। उक्त प्रावधान विधि संहिता में जारी रहा और केवल 1.3.1993 को हटा दिया गया था। इससे यह स्पष्ट होता है कि 6.11.1990 से 1.3.1993 तक, सरकार में धारा 3ए द्वारा भवन कर से छूट देने के लिए शक्ति वैधानिक रूप से प्रदान की गई थी। और 3ए को लागू करने के कारणों और उद्देश्यों के अभिकथन में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि उक्त्त धारा को शासनादेश दिनांकित 11.7.1986 में निहित वादों में से एक को पूरा करने के लिए पेश किया गया था। अपीलार्थियों ने, उक्त शासनादेश दिनांकित 11.7.1986 पर भरोसा करते हुए वास्तव में, 1991 तक एक होटल की इमारत का निर्माण कर लिया था। इसलिए, यह स्पष्ट है कि धारा 3ए के तहत अधिसूचना जारी न करना सरकार का एक मनमाना कार्य था, जिसे वचन विबंधन का सिद्धांत लागू करके ठीक किया जाना चाहिए।। अधिसूचना जारी न करने का मंत्रिस्तरीय कार्य संभवतः अपीलार्थियों के मार्ग में उक्त सिद्धांत के तहत राहत प्राप्त करने बाधा नहीं बन सकता है अन्यथा सरकार के लिए अपने वादे को पूरा किए बिना भाग जाना अनुचित होगा। यह भी एक स्वीकार्य तथ्य है कि ऐसा भारी जनहित का कोई अन्य विचार

मौजूद नहीं है ताकि सरकार को अपने वादे से पीछे हटने में उचित ठहराया जा सके। इसलिए राहत जिसे वर्तमान मामले के तथ्यों पर ढाला जाना चाहिए वह यह है कि उस अवधि के लिए जब धारा 3ए लागू थी, अपीलार्थियों द्वारा कोई भवन कर देय नहीं है। हालांकि, 1.3.1993 के बाद की अवधि के लिए, छूट देने के लिए कोई वैधानिक प्रावधान उपलब्ध नहीं होने के कारण, अपीलार्थियों को कोई राहत नहीं दी जा सकती है क्योंकि जब यह पाया जाता है कि इस तरह की राहत देना क़ानून के विपरीत होगा, तो वचन विबंधन का सिद्धांत सामने आना चाहिए। [ पैरा 39] [741-एच; 742-ए-एच; 743-ए]

मेसर्स मोतीलाल पदमपत शुगर मिल्स बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (1979) 2 एससीआर 641; श्रीजी सेल्स निगम और अन्य बनाम भारत संघ (1997) 3 एससीसीः 1996 ( 10 ) पूरक एस. सी. आर. 888; पंजाब राज्य बनाम नेस्ले इंडिया लिमिटेड (2004) 6 एस. सी. सी. 465: 2004 (2) पूरक एस. सी. आर. 135 पर भरोसा किया।

श्री सिद्धबली स्टील्स लिमिटेड और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (2011) 3 एस. सी. सी. 193: 2011 (3) एस. सी. आर. 134; शर्मा ट्रांसपोर्ट बनाम ए. पी. सरकार. (2002) 2 एस. सी. सी. 188: 2001 (5) पूरक एस. सी. आर. 390; बन्नारी अम्मान शुगर लिमिटेड बनाम सीटीओ (2005) 1 एससीसी 625: 2004 (6) पूरक एस. सी. आर. 264; अविंदर सिंह बनाम पंजाब राज्य (1979) 1 एससीसी 137: 1979 (1) एससीआर-845-विशिष्ट।

पौरनामी ऑयल मिल्स और अन्य बनाम केरल राज्य और अन्य (1986) पूरक एससीसी 728: 1987 एस. सी. आर. 654; जम्मू और कश्मीर राज्य बनाम ए. आर. जक्की और अन्य 1992 पूरक (1) एस. सी. सी. 548; 1991 (3) पूरक एस. सी. आर. 216 उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम महिंद्रा एंड महिंद्रा लिमिटेड (2011) 13 एस.

सी. सी. 77: 2011 (5) एस. सी. आर. 509; इंडियन एक्सप्रेस समाचार पत्र (बॉम्बे) प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य (1985) 1 एस. सी. सी. 641: 1985 (2) एस. सी. आर. 287; कुसिंका ट्रेडिंग और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य (1995) 1 एससीसी 274: 1994 (4) पूरक एस. सी. आर. 448; श्री सिद्धबली स्टील्स लिमिटेड और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य (2011) 3 एस. सी. सी. 193: 2011 (3) एससीआर 134; यू. पी. पावर कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम संत स्टील्स एंड अलॉयज (पी) लिमिटेड (2008) 2 एस. सी. सी. 777: 2007 (12) एस. सी. आर. 1160; राजस्थान राज्य और एक अन्य बनाम जे. के. उदयपुर उद्योग लिमिटेड और अन्य (2004) 7 एस. सी. सी. 673: 2004 (4) पूरक एस. सी. आर. 812; अरविंद इंडस्ट्रीज और अन्य बनाम गुजरात राज्य और अन्य (1995) 6 एस. सी. सी. 53: 1995 (3) पूरक एस. सी. आर. 16; महाबीर वेजीटबल ऑयल (पी) लिमिटेड और अन्य बनाम हरियाणा राज्य और अन्य (2006) 3 एससीसी 620: 2006 (2) एससीआर 1172; आबकारी आयुक्त, यू. पी. बनाम राम कुमार (1976) 3 एससीसी 540: 1976 ( 0 ) पूरक एस. सी. आर. 535; पंजाब राज्य बनाम नेस्ले इंडिया लिमिटेड (2004) 6 एस. सी. सी. 465: 2004 (2) पूरक एस. सी. आर. 135; देवी मल्टीप्लेक्स और अन्य बनाम गुजरात राज्य (2015) 9 एससीसी 132: 2015 (6) एस. सी. आर. 1- संदर्भित किया गया।

ऑस्ट्रेलियन राष्ट्रमंडल बनाम वेरवेन 170 सी. एल. आर. 394- · संदर्भित किया गया।

**मामला कानून संदर्भ**

| | | |
|---|---|---|
| (1979) 2 एससीआर 641 | पर भरोसा किया गया | पैरा 8 |
| 1996 (10) पूरक एससीआर 888 | पर भरोसा किया गया | पैरा 8 |

| | | |
|---|---|---|
| 2004 (2) पूरक एससीआर 135 | पर भरोसा किया गया | पैरा 12 |
| 1987 एससीआर 654 | संदर्भित किया गया | पैरा 16 |
| 2004 (2) पूरक एससीआर 135 | संदर्भित किया गया | पैरा 17 |
| 2015 (6) एससीआर 1 | संदर्भित किया गया | पैरा 20 |
| 1991 (3) पूरक एससीआर 216 | संदर्भित किया गया | पैरा 24 |
| 2011 (5) एससीआर 509 | संदर्भित किया गया | पैरा 24 |
| 1985 (2) एससीआर 287 | संदर्भित किया गया | पैरा 25 |
| 1994 (4) पूरक एससीआर 448 | संदर्भित किया गया | पैरा 27 |
| 2011 (3) एससीआर 134 | संदर्भित किया गया | पैरा 29 |
| 2007 (12) एससीआर 1160 | संदर्भित किया गया | पैरा 29 |
| 2004 (4) पूरक एससीआर 812 | संदर्भित किया गया | पैरा 30 |
| 1995 (3) पूरक एससीआर 16 | संदर्भित किया गया | पैरा 30 |
| 2006 (2) एससीआर 1172 | संदर्भित किया गया | पैरा 32 |
| 2011 (3) एससीआर 134 | संदर्भित किया गया | पैरा 34 |
| 1976 (0) पूरकः एससीआर 535 | संदर्भित किया गया | पैरा 35 |
| 2001 (5) पूरक एससीआर 390 | प्रतिष्ठित | पैरा 37 |
| 2004 (6) पूरक एससीआर 264 | प्रतिष्ठित | पैरा 37 |
| 1979 (1) एससीआर 845 | प्रतिष्ठित | पैरा 38 |

सिविल अपीलीय क्षेत्राधिकार: सिविल अपील सं. 2480/ 2008

2005 के डब्ल्यू. ए. सं. 2123 में केरल उच्च न्यायालय एर्नाकुलम के दिनांक 05.12.2006 के निर्णय और आदेश से।

वी. गिरि, वरिष्ठ अधिवक्ता, रेगेंथ बसंत, सुश्री आंचल टिकमनी, सेंथिल-जगदीशन, अधिवक्ता अपीलार्थी के लिए।

के. राधाकृष्णन, वरिष्ठ अधिवक्ता, जोगी स्कारिया, सुश्री बीना विक्टर, अधिवक्ता प्रत्यर्थियोंके लिए।

न्यायालय का निर्णय इनके द्वारा दिया गया था

आर. एफ. नरीमन, न्यायाधिपति।

1. 11 जुलाई, 1986 को राज्य सरकार ने, एक सरकारी आदेश (जी. ओ.) द्वारा, भारत सरकार के इस सुझाव की सिफारिशों को स्वीकार कर लिया कि पर्यटन को "उद्योग" घोषित किया जाएः इस जी. ओ. का परिणाम यह था कि यह उन लोगों को जो पर्यटन संवर्धन गतिविधियों में लगे हुए हैं, छूट/प्रोत्साहनों के लिये स्वचालित रूप से पात्र होने में सक्षम करेगा जैसा कि द्योगिक क्षेत्र में समय-समय पर लागू होते हैं। दी गई विभिन्न अन्य रियायतों के अलावा, राजस्व विभाग द्वारा लगाया गया भवन कर ऐसी ही रियायत थी। उक्त जी. ओ. में यह कहा गया था कि केरल भवन कर अधिनियम, 1975 संशोधन के लिए अलग से कार्रवाई की जायेगी। शासनादेश में आगे यह कहा गया कि ऐसी रियायतों के लिए पात्र व्यक्ति, दूसरों के साथ, वर्गीकृत होटल यानी 1 से 5 सितारों तक होंगे। उपरोक्त योजना की देखरेख के लिए तीन सरकारी अधिकारियों की एक समिति का गठन किया गया।

2. 25 मार्च, 1987 के एक पत्र के माध्यम से, भारत सरकार ने कालीकट शहर में स्थापित की जाने वाली 55 दोहरे कमरे वाली 3 सितारा होटल परियोजना के रूप में अपीलार्थियों की होटल परियोजना को मंजूरी दी।

3. 11 जुलाई, 1986 के उपरोक्त जी. ओ. और उपरोक्त अनुमोदन के अनुसार, अपीलकर्ताओं ने होटल भवन का निर्माण शुरू किया, जो वर्ष 1991 में पूरा हुआ था। केरल भवन कर अधिनियम के तहत विवरणी दाखिल करने के लिए अधिसूचना 5 सितंबर, 1988 को अपीलार्थियों को जारी की गई थी। अपीलार्थियों ने जवाब दिया कि वे

11 जुलाई, 1986 के जी. ओ. पर भरोसा करते हैं और कहा कि वे उक्त अधिनियम के तहत कोई भी विवरणी प्रस्तुत करने के लिए बाध्य नहीं थे क्योंकि उन्हें भवन निर्माण कर के भुगतान से छूट थी।

4. 11 जुलाई, 1986 के उक्त जी. ओ. के अनुसरण में, 6 नवंबर, 1990 से प्रभावशील 1990 का केरल भवन कर संशोधन अधिनियम पारित किया गया था। उक्त संशोधन अधिनियम के उद्देश्य और कारण इस प्रकार हैं:

"उद्देश्यों और कारणों का विवरण

राज्य में पर्यटन का विकास करने के इरादे से और जी. ओ. (पी) 224/86 / जी. ए. डी. दिनांक 11.07.1986 के अनुसार पर्यटन संबंधी गतिविधियों के लिए विभिन्न रियायतों की घोषणा करने के साथ सरकार ने पर्यटन को एक उद्योग घोषित किया है। सरकार द्वारा घोषित रियायतों में से एक पर्यटन के संबंध में निर्मित भवनों को केरल भवन कर अधिनियम, 1975 के प्रावधानों के संबंध में छूट देना था।

उक्त उद्देश्य की प्राप्ति के लिये केरल भवन कर अधिनियम, 1975 में उपयुक्त संशोधन किया जाना चाहिए और सरकार ने इस उद्देश्य के लिए केरल भवन कर अधिनियम, 1975 में संशोधन करने का निर्णय लिया है।

जैसा कि उपरोक्त प्रस्ताव को तुरंत प्रभावी किया जाना था और क्योंकि विधानसभा के सत्र में नहीं थी अत: केरल के राज्यपाल द्वारा नवंबर, 1990 के दूसरे दिन केरल भवन कर (संशोधन) अध्यादेश, 1990 (1990 का अध्यादेश संख्या 8) घोषित किया गया था और 6

नवंबर, 1990 को केरल राजपत्र असाधारण में प्रकाशित किया गया था।

यह विधेयक उक्त अध्यादेश को विधानमंडल के एक अधिनियम द्वारा प्रतिस्थापित करने का प्रयास करता है।

(केजी एक्स No.1159 डीटी 7.12.1990 में प्रकाशित) "

5. उक्त उद्देश्य के अनुसरण में, धारा 3ए जोड़ी गई थी, जो निम्नानुसार है:

3ए (1) छूट देने की शक्तिः यदि वे पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए ऐसा करना आवश्यक समझते हैं तो, सरकार राजपत्र में अधिसूचना के माध्यम ऐसे किसी भी भवन या भवनों के संबंध में अधिनियम के तहत भुगतान से छूट दे सकती है जिसका निर्माण ऐसी अवधि के दौरान पूरा किया जाता है और ऐसे क्षेत्र जो अधिसूचना में निर्दिष्ट किए जा सकते हैं और जिनके पास ऐसी विशेषतायें हैं जिन्हें इस संबंध में नियमों में निर्धारित किया जा सकता हैं।

इसके अलावा, उक्त छूट प्रावधान को प्रभावी बनाने के लिए, केरल भवन कर नियम, 1974 में नियम 14ए निम्नानुसार जोडा गया था:

"नियम 14ए

(1)केरल भवन कर अधिनियम, 1975 की धारा 3ए में विचारित की गई छूट उन भवनों पर लागू होगी जिनके ऐसे पर्यटन क्षेत्र में निम्नलिखित विनिर्देश अधिसूचनाओं में निर्दिष्ट होंगे और जिनका निर्माण उस अवधि में पूर्ण किया जाता है जैसा कि इस सस्न्बंध में नियमों द्वारा निर्धारित किया गया हो-

(i) वर्गीकृत होटल (1 से 5 सितारे)

(ii) मोटल (जो केरल/केंद्र सरकार का पर्यटन विभाग के विनिर्देशन के अनुरूप हों)

(iii) रेस्तरां (भारत सरकार की वर्गीकरण समिति द्वारा अनुमोदित)

(iv) सरकार द्वारा अनुमोदित मनोरंजन पार्क और अनुसंधान केंद्र

(v) पर्यटन केंद्रों पर रोपवे।

(vi) कलारीपयट्टू और पारंपरिक कला पढ़ाने वाले स्कूलों/संस्थानों द्वारा कूथमबलम/सभागार आदि जैसी संरचनाओं का निर्माण।

(vii) सर्फिंग, स्कीइंग, ग्लाइडिंग, ट्रेकिंग और इसी तरह के शिक्षण देने वाले संस्थान और पर्यटन को बढ़ावा देने वाली समान प्रकृति की गतिविधियाँ;

(viii) पर्यटन क्षमता वाले आयुर्वेदिक केंद्र;

(ix) एम्पोरिया के साथ विशिष्ट हस्तशिल्प (राज्य / केंद्रीय पर्यटन विभाग द्वारा अनुमोदित)

(2) इस प्रकार अधिसूचित क्षेत्र और सरकार के सचिव, पर्यटन विभाग, सरकारी कर विभाग के सचिव और निदेशक, पर्यटन विभाग पर्यटन एक समिति द्वारा प्रमाणित ऐसे अन्य स्थान अनुमोदित पर्यटक केंद्र होंगे।

(3) छूट की अवधि 10 वर्ष या समिति की सिफारिश के आधार पर विशिष्ट क्षेत्रों के संबंध में ऐसी छोटी अवधि होगी जिसे राजपत्र में अधिसूचित किया जाए।

6. 1989 में दायर एक रिट याचिका द्वारा, अपीलकर्ताओं ने 5 सितंबर, 1988 के नोटिस को चुनौती दी। इसके परिणामस्वरूप 30 अगस्त, 1995 को केरल उच्च न्यायालय का एक निर्णय आया, जिसके द्वारा अपीलार्थियों को अपने दावे को आगे बढ़ाने के लिए 1986 के जी. ओ. के तहत गठित समिति के पास भेज दिया गया। समिति द्वारा अंतिम आदेश पारित किए जाने तक, निर्णय में कहा गया था कि प्रतिवादी याचिकाकर्ता द्वारा निर्मित भवन पर किसी भी भवन कर की वसूली के लिए कोई दंडात्मक कदम नहीं उठाएंगे।

7. 6 फरवरी, 1997 के एक पत्र द्वारा, 1986 के जी. ओ. द्वारा वादा की गई छूट को अपीलार्थियों को यह कहते हुए अस्वीकार कर दिया गया था कि धारा 3ए के रूप में 1 मार्च, 1993 से छूट देने की शक्ति को हटा दिया गया था, और इस प्रकार अपीलार्थियों किसी भी प्रकार की छूट नहीं दी जा सकती।

8. 6 फरवरी, 1997 के उपरोक्त पत्र के अनुसार, केरल भवन कर अधिनियम के तहत आवश्यक वैधानिक विवरणी प्रस्तुत करने के लिए याचिकाकर्ता को अधिकारियों द्वारा 28 अप्रैल, 1997 को एक नोटिस जारी किया गया था। इस सूचना को 1997 के ओ. पी. संख्या 9601 में चुनौती दी गई थी, जिसकी परिणति 20 जुलाई, 1998 के एक फैसले में हुई थी। इस निर्णय के माध्यम से, उच्च न्यायालय ने मूल याचिका को अनुमति दी और समिति को मैसर्स मोतीलाल पदमपत शुगर मिल्स बनाम. उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (1979) 2 एस. सी. आर. 641 और श्रीजी सेल्स कॉर्पोरेशन एंड एन.

आर. वी. भारत संघ, (1997) 3 एस. सी. सी. 398 उच्चतम न्यायालय के फैसले के आलोक में मामले पर नए सिरे से विचार करने का निर्देश दिया।

9. 4 फरवरी, 1999 के एक आदेश के माध्यम से, अधिकारियों ने एक बार फिर संपत्ति कर से छूट के लिए अपीलार्थी के आवेदन को खारिज कर दिया। इस आदेश को 1999 की रिट याचिका संख्या 9820 में चुनौती दी गई थी, जिसके कारण 5 दिसंबर, 2006 का विवादित फैसला आया है। उच्च न्यायालय ने अनिवार्य रूप से दो आधारों पर उपरोक्त रिट याचिका को खारिज कर दिया। सबसे पहले, इसने कहा कि जब यह विधि संहिता में मौजूद थी तो वास्तव में, धारा 3ए के तहत कोई छूट अधिसूचना जारी नहीं की गई थी, तो भवन कर के भुगतान से छूट के लिए कोई दावा स्वीकार नहीं किया जायेगा। इसने आगे यह अभिनिर्धारित किया कि कानून में संशोधन करने मात्र का वादा भवन कर के भुगतान से छूट का वादा नहीं करता है। और अंत में, उच्च न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि अब अपीलार्थियों को भवन कर से छूट देने का प्रश्न नहीं उठेगा क्योंकि धारा 3ए को ही 1 मार्च 1993 से हटा दिया गया था।

10. हमारे समक्ष अपीलार्थियों की ओर से पेश हुए विद्वान वरिष्ठ अधिवक्ता श्री वी. गिरि ने तर्क दिया है कि उच्च न्यायालय वचन विबंधन पर इस न्यायालय के विभिन्न निर्णयों पर उनके वास्तविक दृष्टिकोण से विचार करने में विफल रहा है। अपने प्रस्तुतिकरण में, उपरोक्त निर्णय ने स्पष्ट रूप से इस निष्कर्ष पर पहुँचाया कि जब सरकार एक ऐसे वादे को पूरा करती है जिस पर अमल किया गया है, तो सार्वजनिक हित के मामलों को छोड़कर, जिसका वर्तमान मामले के तथ्यों में दावा नहीं किया गया है, सरकार उक्त वादे से पीछे नहीं हट सकती हैं और उन्हें इसके लिए बाध्य होना चाहिए। उन्होंने कहा कि सरकार को वास्तव में धारा 3ए के तहत अधिसूचना जारी करने का निर्देश देने की कोई आवश्यकता नहीं थी क्योंकि यह केवल एक मंत्रिस्तरीय कार्य होगा जिसे पूरा किया गया माना जाएगा यदि सरकार को अपने वादे को पूरा

करना था। विद्वान वकील के अनुसार, इसलिए, इस न्यायालय के निर्णयों को पढ़ने से अनिवार्य रूप से उनके मुवक्किल को राहत मिलेगी।

11. श्री राधाकृष्णन, अपीलार्थियों की ओर से पेश विद्वान वकील ने इन तर्कों का खंडन किया और उच्च न्यायालय के विवादित फैसले का समर्थन किया। श्री राधाकृष्णन के अनुसार, कार्यपालिका को कानून बनाने या उसमें संशोधन करने के लिए कोई परमादेश जारी नहीं किया जा सकता है। किसी भी स्थिति में, विद्वान वकील के अनुसार, धारा 3ए को 1 मार्च, 1993 से हटा दिया जाने के कारण, यह स्पष्ट है कि अपीलार्थियों को आज की तारीख में कोई राहत नहीं दी जा सकती है।

12. दोनों पक्षों की विद्वान सलाह सुनने के बाद, हमारा विचार है कि पहले वचन विबंधन के सिद्धांत की जांच करना आवश्यक होगा जैसा कि मेसर्स मोतीलाल पदमपत शुगर मिल्स, (1979) 2 एस. सी. आर. 641 में दिया गया है और जिसका पंजाब राज्य बनाम. नेस्ले इंडिया लिमिटेड, (2004) 6 एस. सी. सी. 465 में अनुसरण किया गया है।

13. मेसर्स मोतीलाल पदमपत शुगर मिल्स मामले में, इस न्यायालय के समक्ष अपीलार्थी मुख्य रूप से चीनी के उत्पादन और बिक्री के व्यवसाय में लगा हुआ था। उस मामले में राज्य सरकार द्वारा एक आश्वासन दिया गया था कि राज्य में नई वनस्पति इकाइयाँ जो 30 सितंबर, 1970 तक वाणिज्यिक उत्पादन में जाती हैं, उन्हें तीन साल की अवधि के लिए बिक्री कर में आंशिक रियायत दी जाएगी। इस तरह की वनस्पति इकाई की स्थापना के बाद अपीलार्थी ने 2 जुलाई, 1970 को वनस्पति का उत्पादन शुरू कर दिया और छूट मांगी गई। सरकार  स्पष्ट रूप से पलट गई और जनवरी, 1970 के अपने पहले के फैसले को अगस्त 1970 में रद्द कर दिया, उस समय तक अपीलार्थी का कारखाना वाणिज्यिक उत्पादन में चला गया था। इलाहाबाद उच्च न्यायालय में एक रिट

याचिका दायर की गई थी जिसमें राज्य सरकार को 2 जुलाई, 1970 से शुरू होने वाली तीन साल की अवधि के लिए वनस्पती निर्माता की बिक्री को बिक्री कर से छूट देने का निर्देश देने के लिए एक रिट की मांग की गई थी जैसा कि वादा किया गया था। यह याचिका उच्च न्यायालय में अनसुनी कर दी गई, जिसके परिणामस्वरूप उस मामले में याचिकाकर्ता ने सर्वोच्च न्यायालय में अपील की। प्राधिकरणों पर विस्तार से चर्चा करने के बाद, इस न्यायालय ने निर्णय दियाः

"इसलिए, कानून को अब इस निर्णय के परिणामस्वरूप निपटाया जा सकता है यह, कि जहां सरकार यह जानते हुए या इरादा रखते हुए कोई वादा करती है कि वादा करने वाले द्वारा उस पर अमल किया जाएगा और वास्तव में, वादा करने वाला, उस पर भरोसा करते हुए, अपनी स्थिति को बदल देता है सरकार वादे से बंधी रहेगी और वादा करने वाले के कहने पर वादा सरकार के खिलाफ लागू करने योग्य होगा, इसके बावजूद कि वादे पर कोई प्रतिफल नहीं दिया जाता है और वादा संविधान के अनुच्छेद 299 द्वारा आवश्यक औपचारिक अनुबंध के रूप में दर्ज नहीं किया जाता है। यह प्राथमिक बात है कि कानून के शासन द्वारा शासित एक गणराज्य में, कोई भी, चाहे वह कितना भी उच्च या निम्न क्यों न हो, कानून से ऊपर नहीं है। हर कोई किसी भी अन्य की तरह पूरी तरह से कानून के अधीन है और सरकार कोई अपवाद नहीं है। यह वास्तव में संवैधानिक लोकतंत्र और कानून के शासन का गौरव है कि  जहाँ तक कानून के दायित्व का संबंध है, एक निजी व्यक्ति के रूप में सरकार एक ही आधार पर खड़ी हैः पूर्ववर्ती समान रूप से उत्तरार्द्ध की भांति बंधा हुआ है। वास्तव में यह देखना मुश्किल है कि कानून के शासन के लिए प्रतिबद्ध सरकार किस सिद्धांत पर वचन विबंधन के सिद्धांत से प्रतिरक्षा का दावा कर सकती है। क्या सरकार यह कह सकती है कि वह निष्पक्ष और न्यायपूर्ण तरीके से कार्य करने के लिए बाध्य नहीं है या वह "ईमानदारी और सद्भावना" के विचारों से बंधी नहीं है? सरकार को अपने नागरिकों के साथ व्यवहार

करते समय आयताकार सटीकता के उच्च मानक पर क्यों नहीं रखा जाना चाहिए? एक समय था जब कार्यकारी आवश्यकता के सिद्धांत को सरकार के लिए अपने संविदात्मक दायित्वों को भी अस्वीकार करने का औचित्य बताने के लिये पर्याप्त माना जाता था; लेकिन, इसे इस न्यायालय के शाश्वत गौरव के लिए कहा जाए, इस सिद्धांत को भारत-अफगान एजेंसियों के मामले में जोरदार रूप से नकार दिया गया था और कानून के शासन की सर्वोच्चता स्थापित की गई थी। इस न्यायालय द्वारा यह निर्धारित किया गया था कि इस आधार पर कि ऐसा वादा इसके भावी कार्यपालक कदम को रोक सकता है सरकार वचन विबंधन के नियम की प्रयोज्यता से मुक्त होने का दावा नहीं कर सकती है और अपने द्वारा किये गये वादे से मुकर नहीं सकती है। यदि सरकार नहीं चाहती कि उसकी कार्यकारी कार्रवाई की स्वतंत्रता बाधित हो या प्रतिबंधित हो, तो सरकार को यह जानते हुए या यह इरादा रखते हुए कोई वादा करने की आवश्यकता नहीं है कि वादा करने वाले द्वारा इस पर कार्रवाई की जाएगी और वादा करने वाला इसके आधार पर अपनी स्थिति बदल देगा। लेकिन अगर सरकार ऐसा वादा करती है और वादा करने वाला उस पर निर्भर रहते हुए अमल करता है और अपनी स्थिति बदल लेता है, तो ऐसा कोई कारण नहीं है कि सरकार को किसी अन्य निजी व्यक्ति की तरह इस तरह के वादे को पूरा करने के लिए मजबूर नहीं किया जाना चाहिए। कानून वैधता प्राप्त नहीं कर सकता है और सामाजिक स्वीकृति प्राप्त नहीं कर सकता है जब तक कि यह समाज के नैतिक मूल्यों के के अनुरूप न हो और इसलिए न्यायालयों और विधायिका, दोनों का निरंतर प्रयास कानून और नैतिकता के बीच की खाई को बंद करने और दोनों को जितना हो सके करीब लाने के लिए होना चाहिए। उस दिशा में वचन विबंधन का सिद्धांत एक महत्वपूर्ण न्यायिक योगदान है। लेकिन यह इंगित करना आवश्यक है कि चूंकि वचन विबंधन का सिद्धांत एक न्यायसंगत सिद्धांत है, जब इक्विटी की आवश्यकता हो तब इसे परिणाम देने चाहिये। यदि सरकार द्वारा यह

दर्शित किया जा सकता है कि तथ्यों को ध्यान में रखते हुए सरकार द्वारा किए गए वादे को पूरा करना अनुचित होगा, तो न्यायालय वादा करने वाले के पक्ष में बराबरी नहीं करेगा और सरकार के खिलाफ वादे को लागू करेगा। इस तरह के मामले में वचन विबंधन का सिद्धांत विस्थापित होगा क्योंकि तथ्यों पर, इक्विटी यह आवश्यक नहीं होगा  कि सरकार अपने द्वारा किए गए वादे से बंधी रहे। जब सरकार यह दिखाने में सक्षम होती है कि वादा करने के बाद से जो तथ्य सामने आए हैं, उन्हें देखते हुए यदि सरकार को वादे को पूरा करने की आवश्यकता होती है, तो सार्वजनिक हित पूर्वाग्रहपूर्ण होगा, सरकार द्वारा एक नागरिक से किए गए वादे को पूरा करने में लोक हित, जिसने नागरिक को उस पर कार्य करने और अपनी स्थिति में बदलाव करने के लिए प्रेरित किया है और यदि सरकार द्वारा वादे को पूरा करने की आवश्यकता होती है और यह निर्धारित करने की आवश्यकता होती है कि समानता किस तरह से निहित है, तो सार्वजनिक हित प्रभावित होने की संभावना है। सरकार के लिए केवल यह कहना पर्याप्त नहीं होगा कि जनहित की आवश्यकता है कि सरकार को वादे को पूरा करने के लिए मजबूर नहीं किया जाना चाहिए या यदि सरकार को इसका सम्मान करने की आवश्यकता होती है तो जनहित प्रभावित होगा, तो न्यायालय को नियमों को संतुलित करना होगा।। सरकार के लिये केवल यह कहना पर्याप्त नहीं होगा कि जन हित में यह आवश्यक है कि सकार पर वादा पूरा करने का दवाब नहीं बनाया जाना चाहिये या यदि सरकार इस वादे का सम्मान करती है तो जन हित प्रभावित होगा। सरकार, जैसा कि न्यायाधिपति शाह ने भारत-अफगान एजेंसियों के मामले में बताया है, किसी आवश्यकता या समीचीनता के अनिश्चित और अज्ञात आधार पर वादे को पूरा करने के दायित्व से मुक्त होने का दावा नहीं कर सकती है", न ही सरकार अपने दायित्व का एकमात्र न्यायाधीश होने का दावा कर सकती है और  "परिस्थितियों के एकतरफा मूल्यांकन पर "इसे अस्वीकार कर सकती है। यदि सरकार दायित्व का विरोध करना

चाहती है, तो उसे न्यायालय को यह बताना होगा कि ऐसे क्या तथ्य और परिस्थितियाँ हैं जिनके कारण सरकार दायित्व से मुक्त होने का दावा करती है और यह तय करना न्यायालय का कार्य होगा कि क्या वे तथ्य और परिस्थितियाँ ऐसी हैं जो कि सरकार के खिलाफ दायित्व को लागू करने के लिए इसे असमान बनाने के लिए पर्याप्त हैं। केवल नीति परिवर्तन का दावा सरकार को दायित्व से मुक्त करने के लिए पर्याप्त नहीं होगा; सरकार को यह दिखाना होगा कि बदली हुई नीति वास्तव में क्या है और इसका कारण और औचित्य भी क्या है ताकि न्यायालय स्वयं यह निर्णय ले सके कि जनहित किस तरह से निहित है और मामले की निष्पक्षता क्या मांग करती है। यह तभी है जब सरकार द्वारा रखी गई उचित और पर्याप्त सामग्री के आधार पर न्यायालय को संतुष्ट होने पर कि अधिभावी सार्वजनिक हित के लिए यह आवश्यक है कि सरकार को वादा करने के लिए बाध्य नहीं करना चाहिए बल्कि इसके द्वारा निर्बाध रूप से कार्य करने के लिए स्वतंत्र होना चाहिए, तब न्यायालय सरकार के खिलाफ वादे को लागू करने से इनकार कर देगा। न्यायालय मात्र सरकार की अस्पष्टता पर कार्रवाई नहीं करेगा, क्योंकि यह न्यायालय है जिसे यह तय करना है न कि सरकार को कि क्या सरकार को दायित्व से छूट दी जानी चाहिए। यही कानून के शासन का सार है। सरकार पर यह दिखाने का बोझ होगा कि जनहित में सरकार के वादे के अनुसार कार्य करने के अलावा अन्यथा कार्य करना इतना भारी है कि सरकार को वादे से बंधी रखना असमान होगा और न्यायालय इस बोझ के निर्वहन में सबूत के अत्यधिक कठोर मानक पर जोर देगा। लेकिन जहां इस तरह का कोई भारी सार्वजनिक हित नहीं है, वहां भी यह सरकार के लिए "उचित सूचना देने पर, जो एक औपचारिक सूचना होने की आवश्यकता नहीं है, वादा करने वाले को अपनी स्थिति को फिर से शुरू करने का एक उचित अवसर देकर" वादे से मुकरना उपयुक्त हो सकता है बशर्ते कि वादा करने वाले के लिए पूर्व स्थिति को बहाल करना संभव हो। हालाँकि, यदि वादा करने वाला अपने पद पर फिर

से नहीं आ सकता है, तो वादा अंतिम और अपरिवर्तनीय हो जाएगा। इमैनुएल एवोदेजी अजय बनाम ब्रिस्को [(1964) 3 सभी ईआर 556: (1964) 1 डब्ल्यूएलआर 1326] [ पृष्ठ 682 – 685]"

14. न्यायालय ने आगे कहा कि कि याचिकाकर्ता को यह दिखाने के लिए यह आवश्यक नहीं था कि उसे कोई नुकसान हुआ था, और यह पर्याप्त था कि याचिकाकर्ता ने किए गए वादे या अभ्यावेदन पर भरोसा किया था, और ऐसे आश्वासन के आधार पर अपनी स्थिति को बदल दिया। अदालत ने स्पष्ट रूप से कहाः

> "बेशक, यह बताया जा सकता है कि यदि, उत्तर प्रदेश बिक्री कर अधिनियम, 1948 सरकार को बिक्री कर से छूट देने की शक्ति प्रदान नहीं करता, तो सकार के विरुद्ध अभ्यावेदन को लागू करना संभव नहीं होता क्योंकि सरकार को विधि विरुद्ध आचरण करने के लिये विवश नहीं किया जा सकता है, लेकिन चूंकि उत्तर प्रदेश बिक्री कर अधिनियम, 1948 सरकार को बिक्री कर में छूट देने की शक्ति प्रदान करता है, अत; सकार को वैध रूप से अपीलार्थी को बिक्री कर के भुगतान से छूट देने के अपने वादे से बंधा हुआ माना जा सकता है। यह सच है कि कराधान एक संप्रभु या सरकारी कार्य है, लेकिन जिन कारणों पर हम पहले ही चर्चा कर चुके हैं, जहां तक वचन विबंधन के सिद्धांत का संबंध है, उनके लिए संप्रभु या सरकारी कार्य के प्रयोग और सरकार की व्यापार या व्यावसायिक गतिविधि के बीच कोई अंतर नहीं किया जा सकता है। सरकार जिस कार्य का निर्वहन कर रही है, उसकी प्रकृति चाहे जो भी हो, सरकार वचन विबंधन नियम के अधीन है और यदि इस नियम के आवश्यक तत्व संतुष्ट हो जाते हैं, तो सरकार अपने द्वारा किए गए वादे को पूरा करने के लिए

मजबूर की जा सकती है। इसलिए हमारा मानना है कि वर्तमान मामले में सरकार अपीलार्थी को उत्तर प्रदेश राज्य में उसके द्वारा की गई वनस्पति की बिक्री के संबंध में उत्पादन करने की शुरुआत की तारीख से तीन साल की अवधि के लिए बिक्री कर के भुगतान से छूट देने के लिए बाध्य थी और अपीलार्थी से इस तरह के बिक्री कर की वसूली के लिये हकदार नहीं थी। [पीपी। 696- 697]

15. ऐसा अभिनिर्धारित करने के बाद, न्यायालय ने आगे यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि सरकार अपीलार्थी को 2 जुलाई, 1970 से तीन साल की अवधि के लिए बिक्री कर के भुगतान से छूट देने के लिए बाध्य है, जो कि वनस्पति उत्पादन करने की तारीख है, इसलिए, केवल कानून के किसी भी प्रावधान के तहत ऐसी राशि के किसी भी हिस्से को बनाए रखने के राज्य के दावे के अधीन, अपीलार्थी किसी भी बिक्री कर का भुगतान करने के लिए उत्तरदायी नहीं होगा। इस तरह के दावे के अभाव में, राज्य को अपीलार्थी से उसके द्वारा एकत्र किए गए बिक्री कर की राशि को उस पर ब्याज के साथ वापस करना होगा।

16. यह ध्यान रखना महत्वपूर्ण है कि मोतीलाल पदमपत के मामले में उत्तर प्रदेश बिक्री कर अधिनियम, 1948 की धारा 4 के तहत आवश्यक छूट अधिसूचना आदेश जारी नहीं किया गया था। फिर भी, इस न्यायालय ने कहा कि विचाराधीन अवधि के लिए बिक्री कर को पुनर्प्राप्त नहीं किया जा सकता। यह अनुमानतः इसलिये किया गया था क्योंकि वचन विबंधन अपने आप में एक न्यायसंगत सिद्धांत है। इक्विटी की अवधारणाओं में से एक यह है कि किसी को यह मानना चाहिए कि क्या किया जाना चाहिए। मामले के इस दृष्टिकोण में, यह स्पष्ट है कि उच्च न्यायालय का निर्णय गलत है जब यह मानता है कि वास्तव में, धारा 3ए के तहत सरकार द्वारा कोई छूट अधिसूचना जारी नहीं की गई थी, इसलिये याचिकाकर्ता को राहत देने से इनकार करना

होगा। इस निर्णय का बार-बार पालन किया गया है और इसे पौरनामी ऑयल मिल्स एंड अन्य बनाम केरल राज्य और अन्य में इसी तरह की परिस्थितियों में बिक्री कर छूट का लाभ देने के लिए लागू किया गया है। (1986) पूरक एस. सी. सी. 728 परिच्छेद 7 और 8 पर।

17. पंजाब राज्य बनाम नेस्ले इंडिया लिमिटेड, (2004) 6 एस. सी. सी. 465 में रिपोर्ट किए गए इस न्यायालय के हाल के फैसले को पढ़ने पर भी यही परिणाम प्राप्त होगा। उस मामले के तथ्यों में, 1.4.1996 से 4.6.1997 तक की अवधि के लिए, राज्य सरकार द्वारा दूध पर खरीद कर को समाप्त किया जाना था। इस आशय की घोषणा को राज्य के कई समाचार पत्रों में व्यापक सार्वजनिक प्रचारिता दी गई थी और राज्य के वित्त मंत्री द्वारा वर्ष 1996-1997 का बजट प्रस्तुत करते हुए उपरोक्त प्रभाव पर एक भाषण दिया गया था। इसका अनुवाद वित्तीय आयुक्त के दिनांक 26.4.1996 के एक ज्ञापन में किया गया था, जिसे राज्य के उत्पाद शुल्क और कराधान आयुक्त को संबोधित किया गया था। 27 जून, 1996 को जब मुख्यमंत्री और वित्त मंत्री की आबकारी और कराधान आयुक्त और विभिन्न वित्तीय अधिकारियों के साथ बैठक हुई थी तो "एक या दो दिन में" एक वित्तीय अधिसूचना जारी की जाएगी। पहली बार 4 जून, 1998 को मंत्रिपरिषद ने निर्णय लिया कि दूध पर खरीद कर को समाप्त करने का निर्णय स्वीकार्य नहीं था इसके परिणामस्वरूप, अधिकारियों ने उत्तरदाताओं को नोटिस जारी किया जिसमें उन्हें वर्ष 1996-1997 के लिए दूध पर खरीद कर का भुगतान करने की आवश्यकता थी।

18. इस पृष्ठभूमि में, उच्च न्यायालय ने कहा कि राज्य सरकार बिक्री कर को समाप्त करने के अपने वादे और अभ्यावेदन से बंधी है। उच्च न्यायालय के अनुसार, वित्तीय अधिसूचना का अभाव एक मंत्रिस्तरीय कार्य से अधिक कुछ नहीं था जिसे किया जाना बाकी था। चूंकि उत्तरदाताओं ने किए गए अभ्यावेदन पर कार्रवाई की थी, इसलिए

उन्हें वर्ष 1996-1997 के लिए खरीद कर का भुगतान करने के लिए नहीं कहा जा सकता था। रिट याचिका की अनुमति दी गई और उपरोक्त वर्ष के लिए कर की मांग सूचना को निरस्त कर दिया गया।

19. इस न्यायालय ने, पंजाब सामान्य बिक्री कर अधिनियम, 1948 की धारा 30 को स्वीकार करने के बाद, जिसने राज्य सरकार को अनुसूची में उल्लिखित किसी भी वस्तु को अधिसूचना द्वारा खरीद कर से छूट देने की शक्ति दी थी, वचनवबंधन के पूरे कानून का वृहद विवरण के साथ पुनर्कथन किया। इसने मैसर्स मोतीलाल पदमपत शुगर मिल्स, (1979) 2 एस. सी. आर. 641 और अन्य निर्णयों का उल्लेख किया और अंत में कहाः

> "अपीलार्थी किसी भी ऐसे अधिभावी सार्वजनिक हित को स्थापित करने में असमर्थ रहा है जो इसे राज्य सरकार के खिलाफ विबंधन को लागू करने के लिए असमान बना दे। दूध को छूट देने के वित्तीय प्रभावों पर विचार करने के बाद वित्त मंत्री सहित सर्वोच्च अधिकारियों ने अपने बजट भाषण में यह अभ्यावेदन किया था। यह पाया गया कि यदि छूट की अनुमति दी जाती है तो राज्य की अर्थव्यवस्था और जनता के लिए समग्र लाभ अधिक होगा। उत्तरदाताओं ने दूध उत्पादकों के उत्थान के लिए विभिन्न सुविधाएं और रियायतें प्रदान करके उस छूट का लाभ दिया है। इससे इनकार नहीं किया गया है। इन परिस्थितियों में, राज्य सरकार को अब दूध से छूट देने के अपने फैसले से पीछे हटने और 1-4-1996 से पूर्वव्यापी प्रभाव से खरीद कर की मांग करने की अनुमति देना अनुचित होगा ताकि उत्तरदाता किसी भी स्थिति में पहले से ही किये जा चुके खर्च को फिर से समायोजित न कर सकें। उच्च न्यायालय भी सही था जब उसने यह अभिनिर्धारित

किया कि 1997 के कैबिनेट के निर्नय के साथ ही विबंधन का संचालन समाप्त हो जाएगा।

हमारे समक्ष मामले में, अधिनियम के तहत छूट देने की राज्य सरकार की शक्ति को "सकता है" शब्द के साथ जोड़ा गया है जो कि शक्ति की विवेकाधीन प्रकृति को दर्शाता है। हमारा विचार है कि राज्य सरकार द्वारा दूध पर कर को 'समाप्त करने या छूट देने के लिए आवश्यक अधिसूचना जारी करने के लिए अपने विवेकाधिकार का उपयोग करने से इनकार करने का उपयोग उन्हीं कारणों से उचित रूप से नहीं किया गया था, जिनके कारण हमने प्रत्यर्थियों द्वारा उठाए गए वचन विबंधन की याचिका को बरकरार रखा है। इसलिए, हमें उच्च न्यायालय के फैसले की पुष्टि करने और बिना किसी लागत के अपीलों को खारिज करने में कोई संकोच नहीं है।" [पैरा 47-48]

20. इस निर्णय के एक सामान्य अध्ययन से यह भी दर्शित होगा कि राहत से इस आधार पर इंकार नहीं किया गया था कि वास्तव में, पंजाब सामान्य बिक्री कर अधिनियम, 1948 की धारा 30 के तहत कोई छूत अधिसूचना जारी नहीं की गई थी। वास्तव में, इस न्यायालय ने छूट प्रदान करने की शक्ति की विवेकाधीन प्रकृति पर जोर दिया। इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित किया कि राज्य सरकार द्वारा दूध पर कर को समाप्त करने या हटाने के लिए आवश्यक अधिसूचना जारी करने के लिए अपने विवेकाधिकार का उपयोग करने से इनकार करने की शक्ति को उचित रूप से प्रयोग नहीं किया गया था क्योंकि यह ऐसा करने के लिए वचन विबंधन के सिद्धांत से बाध्य थी। और इसलिए , उच्च न्यायालय के इस निष्कर्ष को कि ऐसी अधिसूचना केवल एक मंत्रिस्तरीय कार्य होगा जिसे निष्पादित किया जाना था, इस न्यायालय द्वारा बरकरार रखा गया था। यह निर्णय हाल ही में पैरा 20 पर देवी मल्टीप्लेक्स एंड अन्य बनाम

गुजरात राज्य और अन्य (2015) 9 एस. सी. सी. 132 में लागू किया गया है और इसका पालन किया गया है।

21. वास्तव में, हमें यह कभी नहीं भूलना चाहिए कि वचन विबंधन का सिद्धांत एक ऐसा सिद्धांत है जिसकी नींव यह है कि एक पक्ष द्वारा एक धारणा के विषय से एक असहनीय प्रस्थान जो तथ्य या कानून, वर्तमान या भविष्य का हो सकता है, और जिसे दूसरे पक्ष द्वारा आचरण, कार्य या चूक के किसी नियम के आधार के तौए पर अपनाया गया है, को मनपसंदता की अनुमति नहीं दी जानी चाहिये। और वचन विबंधन का सिद्धांत धारित किये हुए मामलो में दी जाने वाली राहत में लचीलापन होता है जो अंततः पीड़ित पक्ष को न्याय प्रदान करेगा। द कॉमनवेल्थ ऑफ ऑस्ट्रेलिया वी. वेरवेन, 170 सी. एल. आर. 394 में रिपोर्ट किए गए ऑस्ट्रेलियाई उच्च न्यायालय के एक फैसले में इस सिद्धांत का पूरा आधार डीन न्यायाधिपति द्वारानिम्नलिखित शब्दों में अच्छी तरह से रखा गया है

1. जबकि आचरण द्वारा विबंधन का सामान्य संचालन मुकदमेबाजी के पक्षों के बीच होता है, यह वास्तविक कानून का एक सिद्धांत है जिन के अवयवों का अनुरोध किया जाना चाहिए और एक मामले में अन्य तथ्यात्मक मुद्दे की तरह हल किया जाना चाहिए। वे व्यक्ति जो इस तरह के विबंधन से बंधे हो सकते हैं या जो इसका लाभ उठा सकते हैं, वे इसके तत्काल पक्षों से परे, अपनी निजता तक, चाहे रक्त द्वारा, संपत्ति द्वारा या अनुबंध द्वारा बढाते हैं। कि ऐसा होने पर, आचरण द्वारा एक विबंधन संपत्ति और अनुबंध के प्राथमिक अधिकारों की उत्पत्ति हो सकता है।

2. सिद्धांत का केंद्रीय सिद्धांत यह है कि कानून एक पक्ष द्वारा एक धारणा के विषय से अविवेकी-या, अधिक सटीक रूप से, अविवेकी-प्रस्थान की अनुमति नहीं देगा जिसे दूसरे पक्ष द्वारा संबंध, आचरण की प्रक्रिया, कार्य या चूक की कुछ धारणाओं के

आधार के रूप में अपनाया गया है जो उस दूसरे पक्ष के नुकसान के लिए काम करेगी यदि मुकदमे के उद्देश्यों के लिए धारणा का पालन नहीं किया जाता है।

3. चूँकि एक विबंधन तब तक उत्पन्न नहीं होगा जब तक कि इसके लाभ का दावा करने वाली पार्टी ने कार्रवाई या निष्क्रियता के आधार के रूप में धारणा को नहीं अपनाया है और इस तरह खुद को महत्वपूर्ण नुकसान की स्थिति में नहीं रखा है यदि धारणा से प्रस्थान की अनुमति दी जाती है, तो आचरण द्वारा वबंधन के मुद्दे के समाधान में उस पार्टी का संबंधित विश्वास, कार्य और उसकी स्थिति की जांच शामिल होगी।

4. यह सवाल कि क्या इस तरह का प्रस्थान अनुचित होगा, सभी परिस्थितियों में कथित रूप से विबंधित पक्ष के आचरण से संबंधित है। उस पक्ष के द्वारा धारणा को अपनाने और, बने रहने में  इस प्रकार भूमिका अदा की गई कि, यदि वह इससे प्रस्थान करता है तो वह अनुचित और शोषणकारी अचरन का दोषी माना जायेगा। ऐसे मामले चार मुख्य, लेकिन संपूर्ण नहीं, श्रेणियों का संकेत देते हैं, जिनमें उस प्रश्न का सकारात्मक उत्तर उचित ठहराया जा सकता है अर्थात्, जहाँ उस पक्ष ने (क) व्यक्त या निहित अभ्यावेदन द्वारा धारणा को प्रेरित किया है; (ख) धारणा के पारंपरिक आधार पर दूसरे पक्ष के साथ संविदात्मक या अन्य भौतिक संबंध में प्रवेश किया है; (ग) दूसरे पक्ष के अधिकारों के खिलाफ प्रयोग किया है जो केवल तभी मौजूद होंगे जब धारणा सही होगी; (घ) जानता था कि दूसरे पक्ष ने धारणा के तहत काम किया और उसे सुधारने से परहेज किया जब ऐसा करना उसका विवेकाधीन कर्तव्य था। अंततः, हालांकि, यह प्रश्न कि क्या धारणा से प्रस्थान अनुचित होगा, एक सार्वभौमिक मानदंड के रूप में काम करने के लिए बनाए गए कुछ पूर्वकल्पित सूत्र के संदर्भ में नहीं, बल्कि मामले की सभी परिस्थितियों के संदर्भ में हाल किया जाना चाहिये, जिसमें दूसरे पक्ष के आचरण की तर्कसंगतता भी शामिल है जो उसे उस धारणा और हानि की प्रकृति

और सीमा पर कार्य करने में प्राप्त होगी जो वह उस धारणा पर कार्य करके बनाए रखता यदि कार्य की कल्पित स्थिति से प्रस्थान की अनुमति दी गई होती। श्रेणी (ए) के अंतर्गत आने वाले मामलों में, आमतौर पर एक महत्वपूर्ण विचार यह होगा कि कथित रूप से विबंधित पक्ष  यह जानता था या इरादा रखता था या स्पष्ट रूप से उसे जानना चाहिए था कि दूसरा पक्ष अपने आचरण से धारणा को अपनाने और उसके आधार पर कार्य करने के लिए प्रेरित होगा। विशेष रूप से श्रेणी (बी) के भीतर आने वाले मामलों में, तथ्य या मानी गई स्थिति की शुद्धता में वास्तविक विश्वास आवश्यक नहीं है। जाहिर है, किसी विशेष मामले के तथ्य ऐसे हो सकते हैं कि यह उपरोक्त श्रेणियों में से एक से अधिक के अंतर्गत आता है।

5. धारणा तथ्य या कानून, वर्तमान या भविष्य की हो सकती है। इसका मतलब है कि यह किसी तथ्य या स्थिति (कानून की स्थिति या एक कानूनी अधिकार का अस्तित्व हित या संबंध या भावी आचरण की सामग्री सहित) के वर्तमान या भविष्य के अस्तित्व के बारे में हो सकता है।

6. इस सिद्धांत को एक एकीकृत सिद्धांत के रूप में देखा जाना चाहिए जो कानून और समानता दोनों में लगातार काम करता है। इस संबंध में, "न्यायसंगत विबंधन" को एक अलग या विशिष्ट सिद्धांत के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए जो केवल समानता में काम करता है या कुछ परिभाषित श्रेणियों तक ही सीमित है। (जैसे स्वीकृति, प्रोत्साहन, वचन विबंधन या मालिकाना विबंधन) ।

7. आचरण द्वारा विबंधन अपने आप में कार्रवाई के एक स्वतंत्र कारण का गठन नहीं करता है। कल्पित तथ्य या कार्यो की स्थिति (जिसे एक पक्ष अस्वीकार करने से विबंधित किया जाता है) पर रक्षात्मक रूप से भरोसा किया जा सकता है या इसका उपयोग सामान्य सिद्धांतों के तहत उत्पन्न होने वाली कार्रवाई के तथ्यात्मक आधार के

रूप में आक्रामक रूप से किया जा सकता है, जिसमें उस तथ्य या स्थिति के अस्तित्व के आधार पर अंतिम राहत की पात्रता निर्धारित की जा सकती है। कुछ मामलों में, विबंधनविबंधन कार्यों की स्थिति को दर्शाने के लिये संचालित  हो सकता है जो राहत की नींव रखेगा( सामान्य सिद्धांतों के अंतर्गत) जो कि स्वयं एक धारना को जन्म देता है ( जैसे कि- जहाँ एक न्यास की घोषणा की कार्यवाही में बचावकर्ता को न्यास के अस्तित्व से इनकार करने से विबंधित कर दिया जाता है।

8. कानून और समानता में लगातार काम करने वाले एक सिद्धांत के रूप में आचरण द्वारा विबंधन की मान्यता और न्यायिक अधिनियम प्रणाली में समानता की व्यापकता पूरे सिद्धांत को एक हद तक लचीलापन देने के लिए गठबंधन करती है, जिसकी कमी हो सकती है यदि यह एक विशेष रूप से सामान्य कानून सिद्धांत होता। विशेष रूप से, मामलों की अनुमानित स्थिति के आधार पर राहत का प्रथम दृष्टया अधिकार उस मामले में  पात्र होगा जहाँ ऐसी राहत अच्छे विवेक की आवश्यकताओं से उचित हो सकती है और विबंधित दल के लिये अन्यायपूर्ण  होगी। ऐसे मामले में, माम्लों की अनुमानित स्थिति के आधार पर तैयार की गई राहत उन बाहरी सीमाओं का प्रतिनिधित्व करती है जिनके भीतर पक्षों के बीच न्याय करने के लिए उपयुक्त राहत तैयार की जानी चाहिए"

22. उपरोक्त कथन, विभिन्न पूर्ववर्ती अंग्रेजी अधिकारियों पर आधारित, एक अंतर के साथ वचन विबंधन के कानून को सही ढंग से समाहित करता है-हमारे कानून के तहत, जैसा कि ऊपर देखा गया है, वचन विबंधन कार्रवाई के एक स्वतंत्र कारण का आधार हो सकता है जिसमें नुकसान को साबित करने की आवश्यकता नहीं है। यह पर्याप्त है कि एक पार्टी ने किये गये अभ्यावेदन पर कार्रवाई की है। ऑस्ट्रेलियाई मामले का महत्व केवल वचन विबंधन के सिद्धांत से संबंधित दो बुनियादी अवधारणाओं को दोहराना है- एक, कि सिद्धांत का केंद्रीय सिद्धांत यह है कि कानून किसी एक पक्ष द्वारा

एक धारणा के विषय से असहनीय प्रस्थान की अनुमति नहीं देगा जिसे दूसरे पक्ष द्वारा आचरण की प्रक्रिया का आधार के रूप में अपनाया गया है जो कि धारणा का पालन नहीं करने पर दूसरे पक्ष को प्रभावित करेगा। धारणा तथ्य या कानून, वर्तमान या भविष्य की हो सकती है। और दो, किसी दिये गये मामले के तथ्यों पर जो राहत दी जा सकती है वह इतनी लचीली है कि जहाँ कहीं भी अन्याय पाया जाये उसे ठीक किया जा सके। और इसमें इस आधार पर कार्य करने की राहत शामिल होगी कि तथ्य या कानून के रूप में भविष्य की अवधारना को घटित माना जायेगा ताकि पीडित पक्ष को राहत मिल सके।

23. इन परिस्थितियों में, उच्च न्यायालय का निर्णय जब यह अभिनिर्धारित करता है कि वास्तव में, केरल भवन कर अधिनियम, 1975 की धारा 3ए के तहत कोई अधिसूचना जारी नहीं की गई थी (जो अपील अनुदान राहत से इनकार करने के लिए पर्याप्त होगी), इसलिए, कानून में स्पष्ट रूप से गलत है।

24. हालाँकि, इस न्यायालय के कुछ निर्णयों में यह अभिनिर्धारित किया गया है कि कार्यपालिका को नियम या विनियम बनाने के लिए एक परमादेश जारी नहीं किया जा सकता है जो अधीनस्थ विधान की प्रकृति में हैं। (देखिएः जम्मू और कश्मीर राज्य बनाम ए. आर. जक्की और अन्य 1992 पूरक (1) एससीसी 548 पैराग्राफ 10 और 15 पर, और उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य बनाम महिंद्रा एंड महिंद्रा लिमिटेड (2011) 13 एस. सी. सी. 77 81 पर) । यह इस कारण से है कि एक अदालत तब निषिद्ध क्षेत्र में अतिक्रमण करेगी, क्योंकि हमारा संविधान विधायी और न्यायिक गतिविधि दोनों के बीच शक्तियों के व्यापक विभाजन को मान्यता देता है।

25. हालाँकि, किसी वैधानिक प्रावधान के तहत छूट देने की शक्ति किसी दिए गए मामले में अधीनस्थ कानून के बराबर हो सकती है, लेकिन विवेकाधीन शक्ति के

प्रयोग के क्षेत्र में होने के कारण, प्रशासनिक कानून में उन्हीं परीक्षणों के अधीन है, जैसे इसकी वैधता के संबंध में एक कार्यकारी या प्रशासनिक कार्यवाही, यह उसी के अधीन है -इन परीक्षणों में से एक प्रसिद्ध वेड्सबरी सिद्धांत हैजिसके तहत एक अदालत ऐसी विवेकाधीन शक्ति के दुरुपयोग को इस आधार पर रद्द कर सकती है कि अप्रासंगिक परिस्थितियों को शामिल किया गया है या  प्रासंगिक परिस्थितियों को ध्यान में नहीं रखा गया है (उदाहरण के लिए इंडियन एक्सप्रेस न्यूजपेपर्स (बॉम्बे) प्राइवेट लिमिटेड और अन्य बनाम भारत संघ और अन्य (1985) 1 एससीसी 641 में इसका स्पष्ट उदाहरण दिया गया है।

26. उस मामले में, सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 25 (1) के तहत जारी दिनांक 15.7.1977 की एक अधिसूचना द्वारा, आयातित न्यूजप्रिंट पर सीमा शुल्क से पूरी छूट दी गई थी।1.3.1981 को उक्त अधिसूचना को एक नई अधिसूचना जारी करके हटा दिया गया था जिसमें 15 प्रतिशत से अधिक सीमा शुल्क की छूट दी गई थी। दूसरी अधिसूचना इस न्यायालय में उपरोक्त निर्णय में चुनौती का विषय थी। शीर्षक V के तहत फैसले में एक निर्देशात्मक अंश में "क्या सीमा शुल्क अधिनियम, 1962 की धारा 25 के तहत जारी की गई विवादित अधिसूचनाएं प्रशासनिक कानून की पहुंच से बाहर हैं?" यह न्यायालय यह मानते हुए आगे बढ़ा कि सीमा शुल्क अधिनियम की धारा 25 के तहत छूट देने की शक्ति एक विधायी शक्ति है और इसके तहत सरकार द्वारा जारी एक अधिसूचना अधीनस्थ कानून के एक टुकड़े के बराबर होगी। इसके बावजूद, इस न्यायालय ने अभिनिर्धारित कियाः

> "न्याय के सिद्धांतों के उल्लंघन के आधार पर उस अधीनस्थ विधान पर प्राकृतिक सवाल नहीं उठाया जा सकता है, जिस पर प्रशासनिक कार्रवाई पर सवाल उठाया जा सकता है, इस न्यायालय द्वारा तुलसीपुर शुगर कंपनी लिमिटेड बनाम अधिसूचित क्षेत्र समिति,

तुलसीपुर [ए. आई. आर. 1980 एस. सी 882: (1980) 2 एससीआर 1111: (1980) 2 एस. सी. सी. 295], रमेशचंद्र कचारदास पोरवाल बनाम महाराष्ट्र राज्य [(1981) 2 एससीसी 722 ए.आई.आर. 1981 एस.सी. 1127 (1981) 2 व्स.सी.आर. 866 और बट्स बनाम लॉर्ड हेल्सम ऑफ सैंट मैरी लैवॉन में (1972) 1 डब्लू एल आरआर 1373 (1972) 1 आल 1019 (सी.एच.डी.) में निर्धारित किया गय है। जिस मामले में तर्कसंगतता के प्रश्न की जांच नहीं की जा सकती है और विशेष विवेकाधीन शक्तियों का प्रयोग करने के लिये कानून द्वारा निवेश है उनके के बीच एक अंतर किया जाना चाहिये। बाद के मामले में प्रश्न पर उन सभी आधारों पर विचार लिया जा सकता है जिन पर प्रशासनिक कार्यवाही पर सवाल उठाये जा सकते हैं, जैसे दिमाग का इस्तेमाल ना करना, अप्रासंगिक मामलों को ध्यान में रखना, प्रासंगिक मामलों को ध्यान में रखने में विफलता, आदि। किसी मामले के तथ्यों और परिस्थितियों के आधार पर, एक अधीनस्थ कानून को मनमाना या कानून के विपरीत करार दिया जा सकता है यदि यह बहुत महत्वपूर्ण तथ्यों को ध्यान में रखने में विफल रहता है जिन पर स्पष्ट रूप से या आवश्यक रूप से क़ानून या संविधान द्वारा ध्यान में रखा जाना आवश्यक है। यह केवल इस आधार पर किया जा सकता है कि यह वैधानिक या संवैधानिक आवश्यकताओं के अनुरूप नहीं है या कि यह संविधान के अनुच्छेद 14 या अनुच्छेद 19 (1) (ए) का उल्लंघन करता है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह केवल इस आधार पर नहीं किया जा सकता है कि यह उचित नहीं है  या कि इसने उन प्रासंगिक

परिस्थितियों को ध्यान में नहीं रखा है जिन्हें न्यायालय प्रासंगिक समझता है।" [पैरा 78]

27. श्री राधाकृष्णन ने सेवा में कासिंका ट्रेडिंग और एक अन्य बनाम भारत संघ और अन्य (1995) 1 एस. सी. सी. 274 को इसमें विचारित कराया। यह एक ऐसा मामला था जिसमें पी. वी. सी. रेजिन को एक अधिसूचना दिनांक 15.3.1979 द्वारा बुनियादी आयात शुल्क से छूट दी गई थी। उक्त अधिसूचना 31.3.1981 तक और मिलाकर लागू थी इसमें शामिल थे। हालाँकि, अधिसूचना में निर्धारित समय की समाप्ति से पहले, ऐसी छूट को वापस लेने के लिए एक अधिसूचना, दिनांक 16.10.1980, जारी की गई थी। उस मामले में याचिकाकर्ताओं ने वचन विबंधन के सिद्धांत का आह्वान किया। इस न्यायालय ने कहा कि तथ्यों पर कोई अभ्यावेदन नहीं किया गया था, और यह नहीं कहा जा सकता है कि किसी अधिसूचना को समाप्ति की तारीख से पहले रद्द या संशोधित नहीं किया जा सकता है, भले ही सरकार संतुष्ट हो कि इसे सार्वजनिक हित में रद्द करना आवश्यक था।

28. यह मामला स्पष्ट रूप से अलग है क्योंकि यह अभिनिर्धारित किया गया था (पैराग्राफ 22 और 27 देखें) कि पीवीसी रेजिन का उपयोग करने के लिए किसी भी उद्योग को स्थापित करने के लिए कोई प्रोत्साहन नहीं दिया गया था, और दूसरा, जनहित में इस तरह की अधिसूचना को रद्द करने या वापस लेने के लिए आवश्यक पाया गया था। वर्तमान मामले के तथ्यों पर, यह स्पष्ट है कि एक स्पष्ट अभ्यावेदन या वादा किया गया था जिसके अनुसार राज्य ने वास्तव में केरल भवन कर अधिनियम, 1975 में धारा 3ए जोड़कर संशोधन किया था। और समान रूप से, वर्तमान मामले में ऐसा कोई दावा नहीं है कि अधिभावी  लोक हित परिस्थितियों में कोई बदलाव हुआ है, ताकि वचन विबंधन के सिद्धांत को लागू नहीं कहा जा सके।

29. श्री राधाकृष्णन ने श्री सिद्धबली स्टील्स लिमिटेड और अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य और अन्य, (2011) 3 एससीसी 193 मामले में इस न्यायालय के एक फैसले का भी उल्लेख किया। उस मामले के तथ्यों पर, राज्य सरकार द्वारा नए उद्यमियों को 5 साल की अवधि के लिए बिजली बिलों की कुल राशि पर 33.33% पहाड़ी विकास छूट का अनुदान की एक नई औद्योगिक नीति दिनांक 30.4.1990 को घोषित की गई थी। इस अवधि को 5 साल की और अवधि के लिए बढ़ा दिया गया था ताकि नई औद्योगिक इकाइयों को 31.3.1997 तक उपलब्ध कराया जा सके। 18.61998 और 25.1.1999 दिनांकित अधिसूचनाओं के माध्यम से, बिजली के समान शुल्क लागू किए गए थे जिनके द्वारा इस प्रकार दी गई छूट को घटाकर 17 प्रतिशत कर दिया गया। 2000 के बाद, 7.8.2000 दिनांकित एक अधिसूचना के माध्यम से, एक नए शुल्क की घोषणा की गई जिसने पहाड़ी विकास छूट को पूरी तरह से वापस ले लिया। उपरोक्त अधिसूचनाओं को चुनौती इस अदालत द्वारा खारिज कर थी। यह न्यायालय यू. पी. पावर कॉर्पोरेशन लिमिटेड बनाम वर्मे रिपोर्ट किए गए पहले के निर्णय से चिंतित था, जिसने विद्युत आपूर्ति अधिनियम, 1948 की धारा 49 का यह कहते हुए अति प्रतिबंधात्मक दृष्टिकोण लिया, जिसमें कहा गया है कि इसके तहत जारी की गई किसी भी अधिसूचना को केवल रद्द किया जा सकता है या संशोधित किया जा सकता है यदि धारा 49 के तहत ही इस तरह के निरसन के लिए स्पष्ट प्रावधान किया गया हो। इसके अलावा, इस तरह का निरसन सामान्य खंड अधिनियम के तहत केवल तभी हो सकता है जब इस तरह का निरसन व्यापक सार्वजनिक हित में हो सकता है, या यदि अधिसूचना द्वारा दिए गए लाभ को वापस लेने के लिये सरकार को अधिक्रत करने वाला कानून बनाया गया हो। बड़ी बेंच ने संत स्टील्स मामले को यह कहते हुए खारिज कर दिया कि बिजली आपूर्ति अधिनियम की धारा 49 के बारे में उसका दृष्टिकोण स्पष्ट रूप से गलत था, और धारा 14 और 21

सामान्य खंड अधिनियम ने यह स्पष्ट कर दिया कि धारा 49 के तहत जारी अधिसूचना का उपयोग समय-समय पर किया जा सकता है, जिसमें शक्ति को वापस लेना शामिल है।

30. हालाँकि, जब वचन विबंधन के सिद्धांत की प्रयोज्यता की बात आई, तो इस न्यायालय ने राजस्थान राज्य और एक अन्य बनाम जे. के. उदयपुर उद्योग लिमिटेड और अन्य, (2004) 7 एस. सी. सी. 673, और अरविंद इंडस्ट्रीज और अन्य बनाम गुजरात राज्य और अन्य, (1995) 6 एस. सी. सी. 53 में निहित इन टिप्पणियों पर भरोसा किया।

31. राजस्थान राज्य के मामले में, पैरा 25 को इस न्यायालय द्वारा इस निष्कर्ष पर पहुंचने के लिए उद्धृत किया गया था कि राजकोषीय क़ानून द्वारा दी गई छूट के प्राप्तकर्ता को सरकार के खिलाफ कोई कानूनी रूप से लागू करने योग्य अधिकार नहीं होगा क्योंकि ऐसा अधिकार इस अर्थ में अक्षम्य है कि इसे उसी शक्ति का प्रयोग करते हुए छीन लिया जा सकता है जिसके तहत छूट दी गई थी। उस मामले से जो छूट गया था वह अगला पैराग्राफ था जो इस प्रकार हैः

"इस मामले में योजना को जनहित में आर. एस. टी. अधिनियम की धारा 15 और सी. एस. टी. अधिनियम की धारा 8 (5) दोनों के तहत छूट देने के लिए राज्य सरकार में शक्ति के तहत अधिसूचित किया जाने से, राज्य सरकार इन प्रावधानों को संशोधित या निरस्त करने के लिए सक्षम थी। इस प्रकार जो दिया जा सकता उसे उसे वापस लिया जा सकता है जब तक कि सरकार को वचन विबंधन के सिद्धांत के आधार पर ऐसा करने से रोका न जाए, जो सिद्धांत स्वयं समता और लोक हित पर विचार के अधीन है। (एस. टी. ओ. बनाम श्री दुर्गा ऑयल मिल्स देखें)। इसलिए, एक दलबदल योग्य अधिकार का निहित होना संदर्भ में एक विरोधाभास है। छूट के निरंतर अनुदान

का कोई अक्षम्य अधिकार नहीं होने के कारण (वचन रोधन के अपवाद के बिना), प्रत्यर्थी कंपनियों के लिए ऐसी छूट के किसी भी पहलू जैसे दर, अवधि आदि के लिए अक्षम्य अधिकार होने का सवाल ही पैदा नहीं होता है। ( पैरा 26 में)

32. उपरोक्त अनुच्छेद 26 को इस न्यायालय द्वारा महाबीर सब्जी तेल (पी) लिमिटेड और एक अन्य बनाम हरियाणा राज्य और अन्य, (2006) 3 एस. सी. सी. 620, (पैराग्राफ 34 और 35 देखें) मामले में देखा गया है। अतः यह स्पष्ट है कि श्री सिद्धबली स्टील्स लिमिटेड में इस न्यायालय की निर्भरता का मामला उपरोक्त निर्णय पर जब क़ानून के तहत दी गई छूटों के लिए वचन निरसन के सिद्धांत को लागू न करने की बात आती है तो यह पूरी तरह से अनुचित होगा।

33. इसी तरह, अरविंद इंडस्ट्रीज का मामला फिर से एक निर्णय है जिसमें यह स्पष्ट है कि वचन विबंधन के सिद्धांत का कोई उपयोग नहीं हो सकता क्योंकि उस मामले में अपीलार्थी यह दिखाने में सक्षम नहीं था कि कोई निश्चित वादा सरकार द्वारा या उसकी ओर से किया गया था और कि अपीलार्थी ने ऐसे वादे पर अमल किया था। ( पैराग्राफ 9 देखें)

34. इसलिये, यह स्पष्त है कि, श्री सिधबली एक ऐसा मामला था जो केवल इस बात से संबंधित था कि यदि परिस्थितियाँ बदलती हैं तो क्या जनहित में एक अन्य वैधानिक अधिसूचना द्वारा सरकार द्वारा वैधानिक अधिसूचना को वापस लिया जा सकता है (पैराग्राफ 30 और 42 देखें)। हमारे सामने ऐसा मामला नहीं है। हमारे सामने तथ्यों पर, एक अधिसूचना जो धारा 3ए के तहत एक वादे के अनुसार पेश किए जाने के बाद जारी की जानी चाहिए थी, जारी नहीं की गई थी। और वर्तमान मामले के तथ्यों में परिस्थितियों में ऐसा परिवर्तन जिससे जन हित सर्वोपरि हो गया है , अनुपस्थित है।

35. श्री राधाकृष्णन ने तब हमें आबकारी आयुक्त, यू. पी. बनाम राम कुमार, (1976) 3 एस. सी. सी. 540 पैरा 19 पर भेजा इस प्रस्ताव के लिए कि यह अब निर्णयों के एक समूह द्वारा अच्छी तरह से तय किया गया है कि इसकी विधायी, संप्रभु या कार्यकारी शक्तियों के प्रयोग में सरकार के खिलाफ विबंधन का कोई सवाल ही नहीं हो सकता है।

36. मैसर्स मोतीलाल पदमपत चीनी मिल में इसी परिच्छेद का उल्लेख किया गया था और इस प्रकार समझाया गया थाः

> "अगला निर्णय जिसका हमें उल्लेख करना चाहिए वह है आबकारी आयुक्त यू. पी. इलाहाबाद बनाम राम कुमार [(1976) 3 एससीसी 540: 1976 एस. सी. सी. (कर) 360: 1976 पूरक एससीआर 532]। यह एक ऐसा निर्णय भी था जिस पर राज्य की ओर से भारी निर्भरता रखी गई थी। यह सच है कि, इस मामले में, न्यायालय ने कहा कि"अब यह निर्णयों के एक समूह द्वारा अच्छी तरह से तय किया गया है कि अपनी विधायी, संप्रभु या कार्यकारी शक्तियों के प्रयोग में सरकार के खिलाफ विबंधन का कोई सवाल ही नहीं हो सकता है", लेकिन इन कारणों से जिन्हें कि हम वर्तमान में कहेंगे, हमें नहीं लगता कि यह भारत-अफगान एजेंसियों के मामले में हमें कानून के बारे में प्रतिपादित दृष्टिकोण से अलग दृष्टिकोण अपनाने के लिए राजी कर सकता है .....
>
> इस प्रकार निर्णय में जिन निर्णयों पर भरोसा किया गया है, उनसे यह देखा जा सकता है कि न्यायालय संभवतः एक पूर्ण प्रस्ताव रखने का इरादा नहीं रख सकता था कि अपनी सरकारी,

सार्वजनिक या कार्यकारी शक्तियों के प्रयोग में सरकार के खिलाफ कोई वचन विबंधन नहीं हो सकता है। यह पूरी तरह इस न्यायालय के भारत-अफगान एजेंसी के मामले, सेंचुरी स्पिनिंग एंड मैन्युफैक्चरिंग कंपनी के मामले और टर्नर मॉरिसन के मामले में फैसलों के विरोधाभास में होता, और हमें यह विश्वास करना मुश्किल लगता है कि अदालत कभी भी इन पहले के निर्णयों का स्पष्ट रूप से उल्लेख किए बिना और और उन्हेंखारिज करते हुए इस तरह के किसी भी प्रस्ताव का निर्धारण करने का इरादा रख सकती थी । इसलिए, हमारी राय है कि राम कुमार मामले में अदालत द्वारा की गई टिप्पणी उस दृष्टिकोण के विरुद्ध नहीं है जो हम सरकार के विरुद्ध वचन विबंधन के सिद्धांत की प्रयोज्यता के लिए भारत-अफगान एजेंसी के मामले, सेंचुरी स्पिनिंग एंड मैन्युफैक्चरिंग कंपनी के मामले और टर्नर मॉरिसन मामले के निर्णयों के आधार पर ले रहे हैं। [पीपी पर एससीआर 689, 691]

37. श्री राधाकृष्णन ने तब हमें पैरा 24 पर शर्मा परिवहन बनाम ए. पी सरकार (2002) 2 एस. सी. सी. 188, और पैराग्राफ 20 पर बन्नारी अम्मान शुगर लिमिटेड बनाम। सी. टी. ओ., (2005) आई. एस. सी. सी. 625, में फैसले के बारे में इस प्रस्ताव के लिए बताया कि वचन विबंधन को अधिभावी जनहित के लिए झुकना चाहिए।। इस प्रस्ताव के साथ कोई झगड़ा नहीं हो सकता है सिवाय इसके जैसा कि ऊपर बताया गया है, इस मामले में ऐसा कोई सार्वजनिक हित नहीं है।

38. श्री राधाकृष्णन ने हमें अविंदर सिंह बनाम पंजाब सरकार, (1979) 1 एस. सी. सी. 137, पैराग्राफ 11 और 17 में इस प्रस्ताव के लिए संदर्भित किया कि विधायिका अपने आवश्यक विधायी कार्यों को प्रत्यायोजन नहीं कर सकती है। हम यह

समझने से चूक गए हैं कि यह अधिकार वर्तमान मामले के तथ्य पर किस तरह से लागू होगा क्योंकि यह राज्य का रुख नहीं है कि वर्तमान मामले में विधायी शक्ति का कोई अत्यधिक प्रत्यर्पण है।

39. वर्तमान मामले में, यह स्पष्ट है कि कार्यपालिका को नियमों या विनियमों का एक निकाय तैयार करने के लिए ऐसा कोई परमादेश जारी नहीं किया जा रहा है जो प्राथमिक विधान की प्रकृति में अधीनस्थ विधान होगा (आचरण के सामान्य नियम हैं जो उनसे बंधे लोगों पर लागू होंगे)। वर्तमान मामले के तथ्यों पर, केरल भवन कर अधिनियम, 1975 की धारा 3ए के तहत तथ्यों पर एक विवेकाधीन शक्ति का प्रयोग किया जाना है। इस तरह की विवेकाधीन शक्ति का गैर-प्रयोग स्पष्ट रूप से मोतीलाल पदमपत और नेस्ले (उपरोक्त) में इस न्यायालय के फैसलों के संदर्भ में वचन विबंधन के सिद्धांत के अनुप्रयोग के कारण दूषित है। यही कारण है कि इस तरह की शक्ति का प्रयोग न करना अपने आप में एक मनमाना कार्य है जो प्रासंगिक तथ्यों अर्थात् इस तथ्य पर दिमाग का उपयोग न करने से दूषित हो जाता है, कि एक जी. ओ. 11.7.1986 दिनांकित ने विशेष रूप से भवन कर से छूट प्रदान की, यदि उक्त जी. ओ. में किए गए अभ्यावेदन के अनुसार केरल राज्य में होटल स्थापित किए जाने थे। सच है, केरल भवन कर अधिनियम, 1975 में संशोधन करने के लिए विधायिका को कोई परमादेश जारी नहीं किया जा सकता था क्योंकि इसमें न्यायपालिका को अनिवार्य रूप से शक्तियों के पृथक्करण की संवैधानिक योजना के तहत निषिद्ध क्षेत्र में अतिक्रमण करना शामिल होगा। हालाँकि, तथ्यों पर, हम पाते हैं कि धारा 3ए, वास्तव में, केरल विधानमंडल द्वारा दिनांकित 11.7.1986 के जीओ द्वारा द्वारा किए गए अभ्यावेदन को प्रभावी करने के लिये 6.9.1990 को केरल भवन कर अधिनियम, 1975 में उपयुक्त रूप से संशोधन करके अधिनियमित किया गया था। हम पाते हैं कि उक्त प्रावधान विधि संहिता में जारी रहा और केवल 1.3.1993 से हटा दिया गया था। इससे यह स्पष्ट हो

जाएगा कि 6.9.1990 से 1.3.1993 तक, भवन कर से छूट देने की शक्ति वैधानिक रूप से धारा 3ए द्वारा सरकार को प्रदान की गई थी। और हमने देखा है कि धारा 3ए को लागू करने के उद्देश्यों और कारणों के विवरण में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि उक्त धारा को जीओ दिनांक 11.7.1986 में निहित वादों में से एक को पूरा करने के लिए पेश किया गया था। हम पाते हैं कि अपीलकर्ताओं ने उक्त जी. ओ. दिनांक 11.7.1986 पर भरोसा करने के बाद, वास्तव में, 1991 तक एक होटल भवन का निर्माण किया था। अतः, यह स्पष्ट है कि धारा 3ए के तहत अधिसूचना जारी न करना सरकार का एक मनमाना कार्य था जिसे वचन विबंधन के सिद्धांत के अनुप्रयोग द्वारा सुधारा जाना चाहिये। जैसा कि हमारे द्वारा यहाँ ऊपर माना गया है अधिसूचना जारी न करने का मंत्रिस्तरीय कार्य संभवतः उक्त सिद्धांत के तहत अपीलार्थियों को राहत पाने के रास्ते में बाधा नहीं बन सकता है क्योंकि सरकार की ओर से अपने वादे को पूरा किए बिना भाग जाना अनुचित होगा। यह भी एक स्वीकृत तथ्य है कि भारी जनहित का कोई अन्य विचार मौजूद नहीं है ताकि सरकार को अपने वादे से पीछे हटने में उचित ठहराया जा सके। इसलिए वर्तमान मामले के तथ्यों पर जो राहत दी जानी चाहिए, वह यह है कि उस अवधि के लिए जब धारा 3ए लागू थी, अपीलार्थियों द्वारा कोई भवन कर देय नहीं है। हालाँकि, 1.3.1993 के बाद की अवधि के लिए, छूट देने के लिए कोई वैधानिक प्रावधान उपलब्ध नहीं होने से, यह स्पष्ट है कि अपीलार्थियों को कोई राहत नहीं दी जा सकती है क्योंकि वचन विबंधन के सिद्धांत को फलित होना चाहिये जब यह पाया जाता है कि इस प्रकार की राहत देना क़ानून के विपरीत होगा। इसलिये, जहाँ तक ऊपर बताया गया है, हनारी राय है कि वर्तमान मामले के तथ्यों पर अपीलार्थियों से कोई भवन कर नहीं लगाया या एकत्र किया जा सकता है। नतीजतन, हम ऊपर वर्णित सीमा तक अपील की अनुमति देते हैं और उच्च न्यायालय के फैसले को रद्द करते हैं।

देविका गुजराल

अपील की आंशिक रूप से अनुमति है।

यह अनुवाद आर्टिफिशियल इंटेलिजेंस टूल 'सुवास' की सहायता से अनुवादक अधिवक्ता बृजेश कुमार द्वारा किया गया है।

**अस्वीकरण :** यह निर्णय पक्षकार को उसकी भाषा में समझाने के सीमित उपयोग के लिए स्थानीय भाषा में अनुवादित किया गया है और किसी अन्य उद्देश्य के लिए इसका उपयोग नहीं किया जा सकता है। सभी व्यावहारिक और अधिकारिक उद्देश्यों के लिएए निर्णय का अंग्रेजी संस्करण ही प्रामाणिक होगा और निष्पादन और कार्यान्वयन के उद्देश्य से भी अंग्रेजी संस्करण ही मान्य होगा।